

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 84 — कुरुक्षेत्र में ऋषियों के उपदेश

5 October 2026



पवित्र कुरुक्षेत्र में महर्षिगण कृष्ण-बलराम के समक्ष एकत्र होते हैं; प्रभु सिखाते हैं कि सन्त का दर्शन ही पवित्र करता है, और वसुदेव जानते हैं कि विष्णु को अर्पित यज्ञ से कर्म-बन्धन कैसे कटता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस चौरासीवें अध्याय में महर्षि कुरुक्षेत्र पधारते हैं, भगवान् उन्हें ऐसे वचनों से सम्मानित करते हैं जो पवित्रता की हमारी धारणाओं को उलट देते हैं, और वसुदेव का प्रश्न महायज्ञ और नन्द से कोमल विदाई तक ले जाता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)

- अध्याय: 84 (चतुरशीतितम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: कुरुक्षेत्र में महर्षियों का उपदेश
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: कुरुक्षेत्र
- केंद्रीय विषय: ऋषियों का आगमन; सन्तों पर कृष्ण की शिक्षा; ऋषियों की स्तुति; वसुदेव का प्रश्न, ऋषियों का उत्तर और उनका यज्ञ; नन्द से विदाई
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 84, श्लोक 1-71
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, भाग 2)

कुरुक्षेत्र में महर्षियों का आगमन

जब रानियाँ अपनी बात कह चुकीं, तब कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, अन्य राजाओं की पत्नियाँ और गोपियाँ भी सर्वात्मा कृष्ण के प्रति ऐसे प्रेम को देखकर विस्मित हो गई, और उनकी आँखें आनन्द के आँसुओं से भर आई। जब स्त्रियाँ स्त्रियों से और पुरुष पुरुषों से इस प्रकार बातें कर रहे थे, तभी कृष्ण और बलराम के दर्शन की लालसा लिए महर्षिगण वहाँ पधारे — कृष्णद्वैपायन व्यास, देवर्षि नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, शिष्यों सहित परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित और एकत, सनकादि चारों कुमार, अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव।

जगत्पूज्य इन ऋषियों को देखकर सब राजा, पाण्डव और स्वयं कृष्ण-बलराम उठकर उन्हें प्रणाम करने लगे; मधुर वचनों से स्वागत कर उन्हें आसन, पाद्य, मालाएँ, धूप और चन्दन अर्पित किए। जब ऋषि बैठ गए, तब धर्म-रक्षा के लिए अवतरित प्रभु बोले, और पूरी सभा मौन होकर सुनने लगी।

प्रभु का वचन: सन्त दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं

“आज हमारा जन्म सफल हो गया,” कृष्ण ने कहा, “क्योंकि हमें उन योगेश्वरों का दर्शन मिला है जो देवताओं को भी दुर्लभ है।” फिर उन्होंने पूछा — अल्प तपस्या वाले, ईश्वर को एक प्रतिमा में सीमित मानने वाले लोग आपके दर्शन, स्पर्श और पूजन का सौभाग्य कैसे पाएँ? तब उन्होंने वह शिक्षा दी जिस पर पूरा अध्याय टिका है।

न ह्यम्भयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।

ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ११ ॥

na hy am-mayāni tīrthāni na devā mṛc-chilā-mayāḥ te punanty uru-kālena darśanād eva sādhaḥ

अर्थ: केवल जल से बने तीर्थ ही तीर्थ नहीं हैं, और न मिट्टी-पत्थर की प्रतिमाएँ ही देवता हैं; वे तो दीर्घकाल की उपासना के बाद पवित्र करते हैं, किन्तु साधुजन अपने दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 84, श्लोक 11)

अग्नि, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी और मन के देवता, उन्होंने आगे कहा, पूजे जाने पर भी पाप पूरी तरह नहीं धोते, क्योंकि उनकी आराधना भेद-बुद्धि जीवित रखती है; जबकि ज्ञानीजन एक मुहूर्त की सेवा से ही पाप नष्ट कर देते हैं। और जो नश्वर देह को आत्मा, स्त्री-पुत्रादि को अपना मानता है, केवल मूर्तियों में पूज्य और केवल जल में तीर्थ देखता है, तत्त्वज्ञानियों में नहीं — वह मनुष्य-रूप में गौओं के बीच गधा ही है।



सारी सभा के मौन रहते कृष्ण ऋषियों से कहते हैं कि तीर्थ-जल और मिट्टी-पत्थर की प्रतिमाएँ दीर्घ उपासना के बाद ही पवित्र करती हैं, जबकि साधुजन दर्शन मात्र से पवित्र कर देते हैं (श्लोक 9-13)।

ऋषियों का बोध और उनकी स्तुति

अमोघ-बुद्धि भगवान के ये वचन सुनकर ऋषि मौन और विमूढ़ रह गए। बहुत विचार के बाद उन्हें समझ आया: जगदीश्वर होकर भी वे कर्म-बद्ध मनुष्य-सा आचरण इसलिए कर रहे हैं कि संसार उनके उदाहरण से सीखे। तब मुस्कराकर उन्होंने जगद्गुरु को सम्बोधित किया।

श्रीमुनय ऊचुः

यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं

विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ।

यदीशितव्यायति गूढ ईहया

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥

śrī-munaya ūcuḥ yan-māyayā tattva-vid-uttamā vayaṁ vimohitā viśva-sṛjām adhiśvarāḥ yad īśitavyāyati gūḍha īhayā aho vicitraṁ bhagavad-viceṣṭitam

अर्थ: ऋषि बोले: तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ और विश्व-स्रष्टाओं के अधीश्वर हम भी आपकी माया से मोहित हैं, क्योंकि आप, स्वयं ईश्वर होकर, मानवी चेष्टाओं की ओट में ऐसे छिपे रहते हैं मानो किसी के शासन में हों। अहो, भगवान की लीला कैसी विचित्र है! (स्कन्ध 10, अध्याय 84, श्लोक 16)

जैसे एक ही पृथ्वी अनेक नाम-रूप धारण कर भी पृथ्वी ही रहती है, वैसे ही आप सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हुए भी कभी बँधते नहीं — यह सब आपकी क्रीड़ा है, उन्होंने गाया। प्रकृति से परे होकर भी आप भक्त-रक्षा, दुष्ट-दमन और सनातन वैदिक मार्ग की स्थापना के लिए युग-युग में शुद्ध सत्त्वमय रूप धारण करते हैं; वेद आपका हृदय हैं, और उनके धारक ब्राह्मणों का आप आदर करते हैं। “आज आपसे मिलकर हमारा जन्म, विद्या और तप सफल हुए,” वे बोले, और उन कृष्ण को प्रणाम किया जिनकी योगमाया उनकी महिमा पास बैठे यदुओं से भी छिपाए रखती है। उनकी स्तुति प्रार्थना में पूर्ण हुई: आज हमने आपके वे चरण देखे जो पाप-राशि धोने वाली गंगा के उद्गम हैं और जिन्हें परिपक्व योगी हृदय में धारण करते हैं; जिनके आवरण उमड़ती भक्ति से गल जाते हैं, वे ही आपका धाम पाते हैं — अपने भक्तों पर कृपा कीजिए।

वसुदेव का प्रश्न और नारद की मुस्कान

भगवान की स्तुति कर ऋषियों ने उनसे, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर से विदा ली और आश्रमों को लौटने का विचार किया। यह देख वसुदेव आगे आए, प्रणाम कर उनके चरण पकड़े और विनम्रता से पूछा: “हे ऋषियो, आपमें सब देवता निवास करते हैं; आपको नमस्कार है। कृपया बताइए — किस कर्म से मनुष्य सब कर्मों से छूट सकता है?”

नारद मुस्कराए। उन्होंने ऋषियों से कहा कि इसमें आश्चर्य नहीं कि कृष्ण को अपना बालक मानने वाले वसुदेव हमसे अपने कल्याण का मार्ग पूछ रहे हैं; मनुष्यों में निकटता उपेक्षा जन्माती है, और गंगा-तट का वासी भी गंगा-जल छोड़कर अन्यत्र शुद्धि खोजने जाता है। कृष्ण का बोध, उन्होंने कहा, न काल से मन्द होता है, न गुणों, क्लेशों या कर्मों से; वे अद्वितीय ईश्वर हैं, और जब वे अपनी ही शक्तियों की ओट में छिपते हैं, तब अज्ञानी उन्हें ढका मानते हैं — जैसे लोग सूर्य को बादल या ग्रहण से ढका समझते हैं।



विदा लेते ऋषियों के चरण पकड़कर वसुदेव पूछते हैं कि कर्म से छुटकारा कैसे हो; नारद मुस्कराते हैं, क्योंकि कृष्ण की निकटता ने परिचय का भाव जगा दिया है, जैसे गंगा-तट का वासी अन्यत्र शुद्धि खोजे (श्लोक 28-33)।

ऋषियों का उपदेश: यज्ञ का मार्ग

तब कृष्ण, बलराम और राजाओं के सुनते हुए ऋषियों ने वसुदेव को उत्तर दिया।

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः ।

यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥

karmanā karma-nirhāra eṣa sādhu-nirūpitaḥ yac chraddhayā yajed viṣṇum sarva-yajñeśvaram makhaiḥ

अर्थ: कर्म के द्वारा ही कर्म-बन्धन के नाश का यही उपाय भली-भाँति निश्चित किया गया है — कि श्रद्धापूर्वक यज्ञों के द्वारा सर्वयज्ञेश्वर विष्णु की आराधना की जाए। (स्कन्ध 10, अध्याय 84, श्लोक 35)

इसे, उन्होंने समझाया, ज्ञानी चित्त की शान्ति का सबसे सुगम साधन कहते हैं; गृहस्थ के लिए न्यायपूर्वक कमाए धन से परम पुरुष के पूजन से बढ़कर कुछ मंगलमय नहीं। मनुष्य धन की तृष्णा को यज्ञ और दान से, परिवार की लालसा को गृहस्थ-जीवन से, और ऊँचे लोकों की कामना को यह स्मरण कर क्षीण करे कि काल उन्हें भी बहा ले जाता है; फिर वह वन को जाए। द्विज तीन ऋण लेकर जन्मते हैं — देवताओं, ऋषियों और पितरों के — जो यज्ञ, स्वाध्याय और पुत्र से चुकते हैं; जो इन्हें चुकाए बिना घर छोड़ता है, वह गिरता है। “वसुदेव, ऋषियों और पितरों के ऋण से आप मुक्त हैं,” वे बोले। “यज्ञ से देव-ऋण चुकाइए, फिर आप घर त्याग सकते हैं।” अन्त में उन्होंने वह सत्य कहा जिसे देखने के लिए वसुदेव बहुत निकट थे।

वसुदेव भवान् नूनं भक्त्या परमया हरिम् ।

जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद् वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥

vasudeva bhavān nūnam bhaktyā paramayā harim jagatām īśvaram prārcaḥ sa yad vām putratām gataḥ

अर्थ: हे वसुदेव, निश्चय ही आपने जगत् के ईश्वर श्रीहरि की परम भक्ति से आराधना की है; इसीलिए वे आप दोनों के पुत्र बने हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 84, श्लोक 41)

यहाँ अध्याय की दोनों धाराएँ मिलती हैं। कृष्ण ने सभा से कहा था कि जो काम सन्त करता है वह न तीर्थ कर सकता है न प्रतिमा; अब वही सन्त उनके पिता से कहते हैं कि सर्वयज्ञेश्वर उनके घर में उनका बालक बनकर रह रहे हैं। वसुदेव का मोह उनकी भक्ति का दोष नहीं, उसका प्रमाण है: प्रभु अपना ऐश्वर्य उन्हीं से सबसे अधिक छिपाते हैं जिन्हें वे सबसे निकट से प्रेम करते हैं, ताकि वह प्रेम भय से मुक्त रहे। ऋषि यज्ञ का विधान इसलिए करते हैं कि भगवान के पिता अग्नि में उसी पुत्र का पूजन करें जिसे वे घर में गले लगाते हैं, और संसार सीखे कि हर कर्म को मुक्ति तभी मिलती है जब वह हरि को अर्पित हो।

कुरुक्षेत्र में वसुदेव का महायज्ञ

सिर झुकाकर उदारमना वसुदेव ने ऋषियों को प्रसन्न कर उन्हें अपना ऋत्विक् बनाया, और उस पवित्र क्षेत्र में उन्होंने वसुदेव से अनेक श्रेष्ठ यज्ञ कराए। यदुवंशियों और राजाओं ने स्नान कर सुन्दर वस्त्र और कमल-मालाएँ धारण कीं; वसुदेव की पत्नियाँ स्वर्ण-हार और चन्दन से सजकर, पूजा-सामग्री हाथों में लिए, आनन्दपूर्वक यज्ञशाला में आईं। मृदंग, शंख और दुन्दुभियाँ बजीं, नर्तक नाचे, सूत-मागध स्तुति करने लगे, और गन्धर्व-स्त्रियाँ पतियों सहित गाने लगीं। नेत्रों में अंजन और शरीर पर नवनीत लगाए वसुदेव का अठारह पत्नियों सहित अभिषेक हुआ, जैसे नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा का; मृगचर्म धारण किए वे आभूषित रानियों के बीच शोभित हुए, ऋत्विक् इन्द्र के यज्ञ के पुरोहितों-से दमके, और कृष्ण-बलराम अपनी पत्नियों, पुत्रों और स्वजनों — जो उन्हीं के अंश हैं — के साथ दीप्तिमान हुए।



नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा की भाँति अठारह पत्नियों सहित अभिषिक्त वसुदेव महर्षियों को ऋत्विक् बनाकर श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं, और कृष्ण-बलराम अपने स्वजनों के बीच दीप्तिमान हैं (श्लोक 42-50)।

प्रत्येक यज्ञ के अन्त में वसुदेव ने अग्निहोत्र और अन्य विहित कर्म कर सब द्रव्यों और मन्त्रों के स्वामी विष्णु की आराधना की। उन्होंने ऋत्विजों को वस्त्र, आभूषण और दक्षिणा दी, साथ ही शास्त्र-विधि से सजी गौएँ, कन्याएँ, भूमि और धन; पत्नीसंयाज और अवभृथ-स्नान के बाद वे ऋषियों के साथ परशुराम के नाम से प्रसिद्ध राम-हृद गए। वहाँ उन्होंने और उनकी पत्नियों ने अपने आभूषण सूतों को दे दिए, नए वस्त्र पहने, और कुत्तों तक सब वर्गों के मनुष्यों और पशुओं को भोजन कराया; स्वजनों, आए हुए राजकुमारों, ऋत्विजों, देवताओं, मनुष्यों, भूतों, पितरों और चारणों का सम्मान किया, और सबने कृष्ण से विदा लेकर यज्ञ की प्रशंसा करते हुए प्रस्थान किया।

विदाई, और नन्द से वसुदेव के वचन

धृतराष्ट्र, विदुर, कुन्ती सहित पाण्डव, भीष्म, द्रोण, नारद, व्यास और अन्य स्वजनों ने यदुओं से बिछुड़ते समय वियोग की पीड़ा अनुभव की; वे उन्हें गले लगाकर बड़ी कठिनाई से विदा हुए। केवल नन्द, कृष्ण, बलराम और उग्रसेन से बहुमूल्य उपहार पाकर, प्रेमवश रुके रहे। अपनी बड़ी अभिलाषा ऐसे सहज पूर्ण पाकर मानो बिना श्रम समुद्र पार कर लिया हो, वसुदेव ने नन्द का हाथ थामा और बोले।

श्रीवसुदेव उवाच

भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ।

तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥

śrī-vasudeva uvāca bhrātar īśa-kṛtaḥ pāśo nṛṇāṃ yaḥ sneha-samjñitaḥ taṃ dustyajam ahaṃ manye sūrāṇām api yoginām

अर्थ: श्रीवसुदेव बोले: भाई, ईश्वर ने मनुष्यों के लिए स्नेह नामक एक पाश रचा है; मैं मानता हूँ कि शूरवीरों और योगियों के लिए भी उसे त्यागना कठिन है। (स्कन्ध 10, अध्याय 84, श्लोक 61)

“हम कृतघ्नों के प्रति आपने जो मित्रता दिखाई, अतुलनीय है और चुकाई नहीं जा सकती,” वे आगे बोले, “फिर भी वह कभी समाप्त न होगी। पहले हम असहाय थे और आपके लिए कुछ न कर सके; अब धन और ऐश्वर्य के मद में सामने खड़े आपको भी नहीं देख पाते। जो अपना कल्याण चाहता है उसे राज्यलक्ष्मी कभी न मिले, क्योंकि वह मनुष्य को अपने स्वजनों तक से अन्धा कर देती है।” नन्द के प्रेम को स्मरण कर वसुदेव रो पड़े।



नन्द का हाथ थामकर वसुदेव स्वीकार करते हैं कि स्नेह ईश्वर का रचा वह पाश है जिसे शूरवीर और योगी भी नहीं तोड़ पाते, और मित्र का प्रेम स्मरण कर रो पड़ते हैं (श्लोक 60-65)।

नन्द के तीन मास और द्वारका को लौटना

मित्र को प्रसन्न करने और कृष्ण-बलराम के स्नेह में बँधे नन्द दिन-प्रतिदिन प्रस्थान टालते हुए तीन मास वहीं रहे; यदुओं ने उन्हें और समस्त व्रजवासियों को नाना भोगों, आभूषणों, रेशमी वस्त्रों और अमूल्य उपहारों से सम्मानित किया। वसुदेव, उग्रसेन, कृष्ण, बलराम और उद्धव ने उन्हें अलग-अलग भेंटें दीं, और यदुओं की अनुमति से वे चल पड़े; किन्तु नन्द, गोपों और गोपियों ने अपना मन गोविन्द के चरणकमलों में रख दिया था और उसे वापस न ले सके, इसलिए वे हृदय वहीं छोड़कर मथुरा की ओर गए।

जब स्वजन चले गए और वर्षा ऋतु निकट आई, तब कृष्ण को आराध्य मानने वाले वृष्णि द्वारका लौटे और नगरवासियों को वसुदेव के महान् उत्सव, मित्रों से भेंट और तीर्थयात्रा की सब बातें कह सुनाई।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. सन्त तीर्थ और प्रतिमा से भी शीघ्र पवित्र करते हैं। पवित्र जल और प्रतिष्ठित विग्रह दीर्घ सेवा के बाद शुद्ध करते हैं; साधु पुरुष देखे जाने भर से शुद्ध कर देता है।
2. प्रभु अपने आचरण से सिखाते हैं। कृष्ण कर्म-बद्ध मनुष्य की भाँति केवल संसार को सिखाने के लिए बोलते हैं, और ऋषियों के समक्ष उनकी विनम्रता दिखाती है कि बलवान् ज्ञानी का आदर कैसे करे।
3. निकटता उपेक्षा जन्मा सकती है। द्वार पर बहती गंगा छोड़कर दूसरे तीर्थ को जाने वाला नारद का मनुष्य हमें चेताता है कि पास की कृपा अनदेखी न करें।
4. विष्णु को अर्पित कर्म से ही कर्म कटता है। ऋषि वसुदेव से कर्म छोड़ने को नहीं कहते, बल्कि हर कर्म को सर्वयज्ञेश्वर के लिए यज्ञ बना देने को कहते हैं।
5. स्नेह प्रभु का अपना पाश है। वसुदेव स्वीकार करते हैं कि शूरवीर और योगी भी उसे झटक नहीं पाते, और ऐश्वर्य मनुष्य को स्वजनों से अन्धा कर देता है।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में मुझे सबसे अधिक छूता है ब्रह्माण्ड के स्वामी का आसन से उठकर दर्शन को आए ऋषियों का सम्मान करना। पवित्र नदियाँ, मन्दिर की प्रतिमाएँ, तपस्या — जो कुछ हमें मूल्यवान् मानना सिखाया गया, उसे कृष्ण धीरे से जीवित सन्त के पीछे रख देते हैं, और वह भी तब जब सबसे बड़े सन्त उनके सामने बैठे हैं। फिर दृश्य भीतर मुड़ता है: भगवान को गोद में खिलाने वाले वसुदेव भी कर्म से छूटने का मार्ग नहीं जानते, और नारद उस पीड़ा को नाम देते हैं जो हम सबकी है — जो सबसे पास है, उसे देखना सबसे कठिन है। उपाय व्यावहारिक है: कर्तव्य करो, फल विष्णु को सौंप दो। और अन्त में दो पिता हाथ थामे रोते खड़े हैं, उस प्रेम में बँधे जिसे स्वयं भगवान ने बाँधा है। भक्ति स्नेह से पलायन नहीं, उसका शोधन है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अपने जीवन के किसी सच्चे भक्त का एक सच्चे शब्द या छोटी-सी सेवा से सम्मान करें, यह स्मरण रखते हुए कि साधु का दर्शन तत्क्षण पवित्र करता है। फिर दिन का कोई एक साधारण कर्तव्य आरम्भ से पहले मन-ही-मन विष्णु को अर्पित करें। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यह अध्याय कुरुक्षेत्र-यात्रा का उद्देश्य एक सत्य में समेट देता है: अपनी माया से माता-पिता तक से ढके प्रभु उनके भक्तों के प्रति श्रद्धा और यज्ञ-रूप में अर्पित कर्म से पाए जाते हैं। कृष्ण सन्त को हर तीर्थ से ऊपर रखते हैं; ऋषि मानव-रूप में छिपे प्रभु को प्रणाम करते हैं; वसुदेव अग्नि में उस पुत्र का पूजन करते हैं जो उनके घर में रहता है; और नन्द ऐसा हृदय लेकर लौटते हैं जो अब उनका नहीं रहा। हम भी प्रभु को उनके सन्तों में देखना और सब कुछ उन्हें अर्पित करना सीखें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, भाग 2), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), चतुरशीतितम अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-84-the-sages-teachings-at-kurukshetra-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट